International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 16-05-2022, Accepted: 01-06-2022, Published: 18-06-2022
Volume 8, Issue 3, 2022, Page No. 47-52

प्रेमचंद के उपन्यासों में उपनिवेशवाद

दिलंका रसांगी नानायक्कार
शोध छात्रा, हिंदी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
उद्योगीकरण के साथ–साथ कई यूरोपीय देशों ने अपनी अस्थित्व स्थापित करने हेतु एशिया के ऐसे देशों को अपने अधीन कर लिया, जहाँ से कच्चा माल अधिकतर उपलब्ध होते हैं। भारत भी उन देशों में से एक है। उन विदेशियों ने अपना धर्म और संस्कृति भी उपनिवेश देशों में प्रचार–प्रसार करने का प्रयास भी किया था। फलस्वरूप भारतीय संस्कृति में उन लोगों की संस्कृति की अच्छाई एवं बुराई मिल गयी थी। उस युग में भारत का महान साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद से समाज के इस बदलाव को देखा नहीं गया। उन्होंने उपनिवेशवाद के विरुद्ध अपनी कलम द्वारा आवाज बुलंद करना आरम्भ किया और जहाँ तक कि अपनी नौकरी से भी त्याग पत्र दे दिया। उनके कई उपन्यासों में उपनिवेशवाद की दयनीयता दिखाई देती है।

मूल शब्दः उद्योगीकरण, अस्थित्व, धर्म एवं संस्कृति, दयनीयता, आवाज़ बुलंद करना

प्रस्तावना
हिन्द महासागर के एक ऐसा महन देश भारत, पूरे विश्व में सोने की चिड़िया नाम से प्रसिद्ध है। वह इसलिए कि इस धरती पर दुनिया भर के हर उत्पाद मिल जाते हैं। उद्योगीकरण के साथ यूरोपियों की नज़र भी इस सोने की चिड़िया पर थी। फलस्वरूप भारत को कई देशों का उपनिवेश बनाना पड़ा।
जब मुंशी प्रेमचंद का जन्म सन् 1880 ई.वीं को हुआ था, तब पूरा भारत अंग्रेज़ों के अधीन था। अंग्रेज़ों के अन्याय और उत्पीडन से आम जनता का जीवन दयनीय होता जा रहा था। यह सब प्रेमचंद ने अपनी आँखों से देखा और महसूस किया। वे गांधीवादी आकल्प से भी प्रभावित थे। अंग्रेज़ों के विरुद्ध मुंशी प्रेमचंद ने अपनी लेखनी द्वारा प्रहार किया और आम जनता को जगाया। उनके लिखे हुए कई उपन्यासों में उस उपनिवेश के विरुद्ध प्रेमचंद के प्रहार देखने को मिलते हैं।
मुंशी प्रेमचंद, भारत के महान साहित्यकार, कथाकार एवं उपन्यास सम्राट थे। आपकी ख्याति पूरी दुनिया में हर कोने तक है। जिस समय आपका जन्म हुआ था, उस समय पूरा देश अंग्रेज़ शासन के अधीन था। उन अंग्रेज़ों का अन्याय उन्होंने अपनी आँखों से देखा और महसूस किया। बाद में वही अनुभूति उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से लोगों के सामने लाये थे। उद्योगीकरण के साथ–साथ यूरोपियों ने अपने पूंजीवाद की विकास हेतु एशिया के कुछ ऐसे छोटे देशों पर कब्ज़ा किया, जहाँ से ज्यादा कच्चा माल की उपलब्धि होती हैं। वही कच्चा माल ले कर, उसका उत्पादन स्वयं करके अधिक दाम में बेच कर, मुनाफ़ा कमाना ही उनका मकसद था। भारत भी मसाले और कपड़े के लिए पूरे विश्व में प्रसिद्ध था। यूरोप देशों से व्यापर करने के लिए लोग भारत में आया करते थे। उस समय देश के आतंरिक राजनीतिक रूप से दंगें होते रहते थे। इससे देश में आये हुए यूरोपियों के लिए फ़ायदे की बात थी। फलस्वरूप इन यूरोपियों में राजनीतिक प्रतिस्पर्धा भी आरम्भ हो गयी। उनलोगों ने धीरे–धीरे भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने की कोशिश की। सन् 1498 ई वीं को पुर्तगाली, सन् 1639 ई वीं को डच और सन् 1740 ई वीं को फ़्रांसिसी भारत के समुंदरी इलाकों पर अधिकार पा लिया था। सन् 1707 ई वीं को भारत के अंतिम मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल साम्राज्य का पतन हो गया और पूरा भारत राजतांत्रिक रूप से अस्थावर हो गया। मौके का फायदा उठाते हुए सन् 1858 ई वीं को अंग्रेज़ों ने पूरे भारत अपने अधीन कर लिया था। उस अंग्रेज़ी उपनिवेश के समय लमही गाँव में डाक मुंशी अजायब राय के घर 31 जुलाई सन् 1880 को एक प्यारा से बच्चे का जन्म हुआ, जिसे पूरी दुनिया आज भी प्रेमचंद के नाम से जानती हैं। जिस समय प्रेमचंद का जन्म हुआ था, उस समय समाज के लोगों में अँध विश्वास भरा हुआ था। उस मुर्दा रूढ़ी समाज में ही उनका जन्म हुआ था। लोगों का मानना है कि प्रेमचंद तेतर है, यानि कि 'तीन बेटियों के बाद ही प्रेमचंद के जन्म होने के कारण उनके माँ या पिता में से किसी एक की मृत्यु हो जाएगी'। यहीं बात माँ–बाप में खटकने लगी थी। नवाब की उम्र आठ साल होते–होते ही उनकी माँ ने बिस्तर पकड़ ली। वह छः महीने तक अधिक बीमार थी। उस समय पिता जी भी घर पे नहीं थे। वे नौकरी के लिए दूर जा चुके थे। माँ के लाड़ प्यार में लिपटे नवाब की किस्मत पलटते हुए उनकी माँ अचानक चल बसी। चाहे दोस्ती हो, चाहे प्यार हो नवाब को सिर्फ अपनी माँ से ही मिला था। भला पिताजी कहा माँ की जगह पूरा करते! बिन माँ का बच्चा नवाब, की सूनी दुनिया उजाला करने के लिए पिता जी ने दूसरी शादी कर ली। इससे नवाब के जीवन में दोहरी अनुभूति प्राप्त हुई। एक तो मातृ स्नेह का अभाव और दूसरा विमाता की गैर सलूकें, यानि कि पराये ढंग का व्यवहार। जिस के कारण उनको जीवन में उदासीनता के साथ–साथ एकांतता प्रिय होने लगी। धीरे–धीरे नवाब की उम्र बढ़ती गयी और वह किताबें पढ़ने में रूचि रखने लगे। नवाब की उम्र पंद्रह बरस होते–होते उनके चाचा उनके लिए एक रिश्ता ले आये। नवाब की शादी एक भद्दी, और नवाब से कई गुना उम्र में बड़ी, एक औरत से करवाया गया। वैवाहिक जीवन से वे बिल्कुल विमुख हो गये थे। वे कभी भी अपनी बीवी के पास नहीं जाते थे। इसी

बीच में नवाब के पिता जी की भी मृत्यु हो गयी। पिताजी की मृत्यु के बाद नवाब का जीवन और भी संकटों से भर गया। उन्हें कई दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ा। गरीबी इतनी थी कि कभी उनके पाँव में जूते तक नहीं थे, बदन में ढंग का कपड़ा तक नहीं था। उस समय देश की स्थिति भी ख़राब चल रही थी। बाल विवाह प्रथा चल रही थी। बहु–बेटियों को मजबूरी में वैश्या वृत्ति अपनानी पड़ी। स्त्री मात्र भोग्या रूप थी। अनमेल विवाह, बेमेल विवाह आदि से उनके दाम्पत्य जीवन में समस्याएँ खड़ी हो गयी थी। समाज में भुखमरी, सूदखोरी, अनुशासनहीनता, बीमारियाँ, पापाचार, लोगों में अंधविश्वास बढ़ता जा रहा था। पंडों, पुजारियों, पंडितों की वजह से धर्म भी भ्रष्ट हो रहा था। उन ठेकेदारों का शिकार अछूत लोग और गाँव के किसान थे, जबकि अलग–अलग तरीकों से उनका शोषण कर रहे थे। फलस्वरूप जनता में भी असंतोष, क्रांति, तथा विद्रोहात्मक भावनाओं का प्रादुर्भाव हुआ था। तब–तक दृढ़तापूर्वक ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें भारत में जम गयी थी। पूरा देश अंग्रेज़ों के अत्याचारों से कराह रहा था। अंग्रेज़ देश की प्राणशक्ति, जोंक की तरह चूसने लगे। किसानों के ज़मीन से कर वसूल करना ही उनके शोषण तंत्र का मूल अभिप्राय था। भारत का किसान आन्दोलन इसी की फल स्वरुप था। प्रेमचंद ने उसी आन्दोलन को वाणी दी थी। उन्होंने अपनी 'हंस' नामक पत्रिका में लिखा था, 'इसमें संदेह नहीं कि स्वराज्य का आन्दोलन गरीबों का आन्दोलन है। अंग्रेज़ी राज्य में गरीबों, मज़दूरों, और किसानों की दशा जितनी खराब है, और होती जा रही है, उतनी समाज के किसी अंग की नहीं। यों तो सरकार ने किसी को बेदाग़ नहीं छोड़ा। शिक्षित समुदाय आये दिन अपने हकों को छीनते देखता, राजाओं, रईसों की जायदादें और रियासतें ज़ब्त हो रही हैं, व्यापारियों और मीलों के स्वामियों को मैनचेस्टर... का शिकार बनाया जा रहा है, और यह सब कुछ होने पर भी सरकार के हाथों किसी और सम्प्रदाय की इतनी बरबादी नहीं हुई, जितनी किसानों और मज़दूरों की, ख़ास कर किसानों की।'[1] निर्धन किसान एक तरफ़ तो अंग्रेज़ी साम्राज्य से टक्कर खाते थे और दूसरी तरफ़ ज़मींदारों और महाजनों के शोषक भी बन गए थे। सन् 1919 ई वीं को प्रेमचंद ने 'ज़माना' पत्रिका में स्पष्ट लिखा था; 'आने वाला ज़माना अब किसानों और मजदूरों का है। दुनिया की रफ़्तार इसका साफ़ सबूत दे रही है।'[2] ब्रिटिश सरकार ने भूमिकर वसूल करने हेतु गाँवों में ज़मींदारी प्रथा का निर्माण किया था और उनको यह अधिकार भी दे दिया था कि वे अपने मन मानी से किसानों का शोषण कर सकें। जब गांधी जी ने नमक आन्दोलन शुरू किया तो, प्रेमचंद 'आज़ादी की लड़ाई' शीर्षक पर टिपण्णी करते हुए लिखते हैं; 'जो चीज़ जीवन के लिए उतनी ही आवश्यक है, जितनी हवा और पानी, उस पर कर लगाना नीति के विरुद्ध है। अंग्रेज़ी राज्य के पहले, भारत में यह कर कभी न लगाया गया था। आज दुनिया भर में भारत ही एक ऐसा देश है, जहाँ नमक पर कर लगाया जाता है।'[3] जमींदार हमेशा ब्रिटिश सरकार के बने रहने का समर्थन करते रहते थे। जब किसान अपने ज़मीन के फ़सल से कर चुकाने में असमर्थ था, तब उसको कर्ज़ लेने की आवश्यकता पड़ी थी। सरकार, किसानों को सूद–दर पर क़र्ज़ लेने की छूट दी गयी और इसके लिए अप्रत्यक्ष रूप में महाजन प्रथा भी गाँवों में आ गए। अंग्रेज़ी हुकूमत के अनुसार उनको कुर्की या नीलामी कराने का अधिकार भी दिया गया था। सरकारी क़ानून और पुलिस की सहायता उनके लिए हरवक्त उपलब्ध थी। वही उपनिवेशवादी चेतना प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में दर्शाया है। 'गोदान' का एक गौण पात्र 'रामसेवक' कहता है; "थाना, पुलिस, कचहरी, अदालत सब हैं हमारी रक्षा के लिए, लेकिन रक्षा कोई नहीं करता। चरों तरफ़ लूट है। जो गरीब है बेबस है, उसकी गरदन काटने के लिए सभी तैयार रहते हैं।..पटवारी को नज़राना और दस्तूरी न दे, तो गाँव में रहना मुश्किल। ज़मींदार के चपरासियों और कारिन्दों का पेट न भरे तो निबाह न हो। थानेदार और कांस्टेबल तो जैसे उसका दामाद हैं,...।"[4] यही उस समय गाँव का यथार्थ था और अज भी देखने को मिलता है। अगर कोई भी हिन्दुस्तानी आफ़िसर आम जनता को सहारा देगा, तो उनको उसकी बड़ी सज़ा मिल जाती थी, यहाँ तक कि नौकरी का दर्जा भी घटा दिया जाता था। चाह कर भी देशी आफ़िसर जो ब्रिटिश शासन के अधीन हिंदुस्तान में काम करता था, किसानों की मदद नहीं करता था। उसका एक प्रसंग 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में दिखाया गया। ज्ञानशंकर के अधम क्रिया के विरुद्ध किसान एक जुट हो जाते थे और उसके विरुद्ध मुकद्दमा चलाते थे। उस समय हाकिम ज्वालासिंह के मन में किसानों के प्रति सहानिभूति हो गयी। ब्रिटिश शासन यह बर्दाश्त नहीं कर सकता था कि उनके हिन्दुस्तानी ऑफिसर किसानों के साथ सहानुभूति दिखाए और न्याय करें। उन्होंने ज्वालासिंह के विरुद्ध 'एंग्लो इंडिया' पत्र तथा ज़मींदारों के समर्थन पत्र से ज्वालासिंह के विरुद्ध एक अभियान छेड़ दिया। उसके फलस्वरूप उसकी बदली हो गयी और उसका दर्जा भी घटा दिया गया। जब भी कोई मसला हो चाहे वह अन्याय ही क्यों न हो, अंग्रेज़ी शासन तंत्र के विरुद्ध कोई भी कानून खड़ा नहीं हुआ। प्रेमचंद ने ऐसी दयनीयता को अपनी आँखों से देखा था। जैसे ही उन्होंने सरकारी नौकरी से इस्तीफ़ा दिया, वैसे ही ब्रिटिश सरकार और ज़मींदारों द्वारा किये गए शोषण–तंत्र का खुल कर चित्रण करना शुरू किया। रंगभूमि और कायाकल्प उसका प्रमाण है। रंगभूमि में ब्रिटिश सरकार से आम जनता का संघर्ष का सीधा चित्रण प्रतीकात्मक शैली से दिखाया गया है और कायाकल्प में इस संघर्ष को किसान–ज़मींदार के आड़ में प्रस्तुत किया गया है। इस सम्बन्ध में डॉ० कुँवरपाल ने, 'प्रेमचंद अंक', अप्रैल सन् 1980 को, टिपण्णी करते हुए अपने लेख में लिखा है; 'ग्रामीण जन साम्राज्यवादी और उनके भारतीय एजेंट ज़मींदारों के दुहरे शोषण की चक्की के बीच पीस रहे थे। ब्रिटिश काल में सूदखोर महाजनों का एक ऐसा वर्ग पैदा हुआ, जिससे एक बार क़र्ज़ लेने पर गाँव के किसान जीवन भर गुलामी का पट्टा पहनने पर मजबूर हो जाते...प्रेमचंद के लिए राष्ट्रीय–मुक्ति का अर्थ केवल विदेशी साम्राज्यवाद से छुटकारा पाने में ही नहीं, वे किसानों और मजदूरों को सामंतों तथा पूँजीपतियों के शोषण से पूर्ण मुक्ति को ही असली स्वराज्य मानते हैं।'[5] ब्रिटिश राज्य में गरीबों के लिए कोई भी न्याय नहीं था। नज़र–नज़राने को देखते ही वे अदालत या कोई न्यायालय से न्याय माँगने की लालसा छोड़ देते थे। पैसे वालों को ही न्याय मिलता था। उच्चवर्ग के पैसेवाले लोग ब्रिटिश राज्य का समर्थन और प्रशंसा करते हुए अंग्रेजों से बड़े–बड़े पद ले कर सुखपूर्ण जीवन बिता रहे थे। उस समय समाज में गाँव की स्थिति बहुत दयनीय थी। ज़मींदार, महाजन, साहूकार गाँव को अपना निजी संपत्ति मान कर चल रहे थे। वे सब जोंक की तरह मज़दूरों, किसानों का खून चूस रहे थे। उनके शोषण तंत्र से साधारण किसान का जीवन और भी कठिन होता जा रहा था। वे लोग नियति पर ही इसकी ज़िम्मेदारी ठहरा कर गतिहीन जीवन बिता रहे थे। जहाँ एक तरफ़ समाज के मध्यवर्ग के लोग पाश्चात्य परम्पराओं और नई मान्यताओं को अपनाने में तुले रहते थे, वही दूसरी तरफ़ निम्न वर्ग के लोग अपने कम आमदनी के साथ मर्यादा पालन करते हुए दुखी एवं द्वंद्वात्मक जीवन जी रहे थे। प्रेमचंद इन सभी परिस्थितियों से वाकिफ़ थे, इसलिए उन्होंने अपने उपन्यासों में ज़मींदारों, महाजनों, और सरकारी

अमलों द्वारा इन्हीं किसानों पर किये गए शोषण तंत्र का बहुत ही व्यापक, वैविध्यपूर्ण, और दर्दनाक चित्रण किया था। गाँव में यह महाजन, एक साथ अनाज का व्यापर और सूदखोर की भूमिका भी अदा करने लगे थे। गाँव में फ़सल उगने पर वे लोग किसानों से आड़े हाथों में अनाज खरीदते थे और उन्हीं किसानों को फ़िर महँगे हाथों बेचते थे। इस तरह महाजनों द्वारा किसानों का शोषण चक्र चल रहा था। पैसा न होने के कारण अंत में किसान अपनी ज़मीन उनको बेचने के लिए विवश होता था और उसी ज़मीन पर मज़दूर बनकर काम करता था। कभी–कभी क्रोध में आने के बाद किसान महाजनों के खिलाफ़ खड़े भी हो जाते थे, पर फ़ौरन उनको यह पता चलता था कि उन महाजनों के पीछे साम्राज्यवादी शक्ति खड़ी है तो चुप हो जाते थे। प्रेमचंद का 'गोदान' उपन्यास उन्हीं किसानों की दयनीय स्थिति का दास्ताँ है। धनिया होरी से पूछती है कि एक दिन मालिक से न मिलने पर क्या होगा तो इसका जवाब देते हुए होरी कहता है; "जब दुसरे के पाँव–तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुसल है।" होरी गाँव का किसान था। शोषण के शिकार होने के बावजूद भी वह ज़मींदारों के साथ इसलिए ताल्लुक रखना चाहता था, ताकि आगे और मुश्किल हालात का सामना करना न पड़े। इस प्रकार किसानों पर अत्याचार देख कर कायाकल्प उपन्यास के एक पात्र देश–प्रेमी नव युवक चक्रधर का खून खौलता है और वह कहता है, "सारा देश गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है, फ़िर भी हम अपने भाइयों की गर्दन पर छुरी फेरने से बाज़ नहीं आते। इतनी दुर्दशा पर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं। जिनसे लड़ना चाहिए, उनके तलुए चाटते हैं और जिनसे गले मिलना चाहिए, उनकी गर्दन दबाते हैं। यह सारा जुल्म हमारे पढ़े–लिखे भाई ही कर रहे हैं।.."[6] गोदान में 'गोबर' एक विद्रोही पात्र था। वह शहर से जब वापस आया तो सारे अन्याय उसके समझ में आने लगे थे। पिता और गाँव के लोग ज़मींदारों के शोषण सह कर उनके ही सेवा में लगे रहते थे। उस अंग्रेज़ी गुलाम ज़मींदारों का विरोध करते हुए वह कहता है; "हमने ज़मींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान हो तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलाएं"[7] किसानों की हालात को स्पष्ट करते हुए रमेश चन्द्र दत्त लिखते हैं;– 'उनके घरों पर छप्पर नहीं होता, जाड़े और बरसात से अपनी रक्षा करने के लिए उनके पास कोई साधन नहीं होता, उनकी पत्नियाँ चिथड़ों में लिपटी रहती है, उनके छोटे–छोटे बच्चे नंगे घुमते हैं, फ़र्निचर नाम की कोई चीज़ उनके पास नहीं होती, जाड़े के दिनों में एक कम्बल भी उनके लिए विलास की वस्तु होती है।...यह एक अभिधात्मक तथ्य है, लाक्षनात्मक नहीं, कि भारत के कृषि श्रमिक और उनका परिवार सामान्यतः सालों–भर अन्नाभाव से पीड़ित रहता है। बचपन से ही उनका पालन पोषण गरीबी की बीच होता है और वे अकाल तथा महामारी के सहज शिकार हो जाते हैं। उन किसानों की स्थिति, जिनके पास ज़मीन है, कुछ अच्छी है। उन्हें रहने के लिए घर, पहनने के लिए वस्त्र और खाने के लिए भोजन मिल जाता है, पर कठोर भूमि कर के रूप में उनकी आय का अधिकांश भाग सरकार के पास चला जाता है।'[8] 'सेवासदन' उपन्यास में महंत ज़मींदार, ज़मींदारी का काम के अलावा महाजनी का काम भी सम्हालता था। सरकारी अधिकारी उसकी सहायता में खड़े थे। यज्ञ कराने के लिए उसने सभी किसानों से हल के पीछे पाँच रूपया ज़बरदस्ती कर वसूल करता था। जब चीतू अहीर कर नहीं दे सका, तो उसे अपने प्राण से हाथ धोना पड़ा था। इसी स्थिति के बीच देश में भारतीय कोंग्रेस की स्थापना हुई। जब राजतंत्र में गोखले और तिलक का प्रवेश हुआ, तो कोंग्रेस का रुख बदल गया था। वह एक राष्ट्रीय संगठन के रूप में परिवर्तित हो गयी थी। 20 वीं सदी में लोक मान्य तिलक का राष्ट्रीय विचार धारा, भारतीय लोगों पर सांस्कृतिक आदर्श और उनकी प्राचीन परंपरा के प्रति जागृत कराया गया था। तिलक भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन को कायम रखना चाहते थे। भारत में ईसाई धर्म और पाश्चात्य संस्कृति के प्रचार–प्रसार में अंग्रेज़ लगे रहते थे। तिलक उसके विरुद्ध खड़े हो गए और भारतीय धर्म, दर्शन और प्राचीन आदर्शों की खोज एवं उनका पुनः स्थापना कायम करने में सक्षम हो गए। प्रेमचंद का भी झुकाव गोखले की अपेक्षा तिलक के विचार धाराओं पर था। गोखले की आलोचना करते हुए प्रेमचंद ने लिखा था; "आप जैसे विद्वान और बहुज्ञ व्यक्ति से यह बात छिपी नहीं थी कि विदेशी सरकार सदा जनता की सहानुभूति से वंचित और गलत फ़हमियों का शिकार बनी रहती है....इसी दृष्टी से आपने कभी सरकार को जनसाधारण की निगाह में गिराने या दोषी बनाने की चेष्टा नहीं की, बल्कि जब कभी मौक़ा मिला बड़े गर्व से उन बड़े–बड़े लाभों की चर्चा की जो अंग्रेज़ी राज्य की बदौलत हमें प्राप्त हैं।.."[9] जब प्रेमचंद सन् 1924 ई वीं में 'रंगभूमि' उपन्यास लिख रहे थे, तब भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन चल रहा था। तिलक के पश्चात् भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन गांधी जी ने जारी रखा था। पूरे भारत में गांधी जी का प्रभाव फैला हुआ था। उनकी राष्ट्रीयता में नैतिकता और आध्यात्मिकता मिली हुई थी। अंग्रेज़ों के दमन नीति का सामना करने के लिए गांधी जी ने लोगों को अपना सत्य, अहिंसा एवं आत्म–बलिदान के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया था। विदेशी सामंत से पूरे देश की आज़ादी के लिए देश के नौजवान, बुद्धिजीवी रास्ते पर उतर आये थे। दिसंबर सन् 1920 ई वीं में गांधी जी का असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव नागपुर कोंग्रेस में बहुमत से पारित हुआ था। गांधी जी के साथ मोतीलाल नेहरू, देशबंधु चितरंजन दास, लाला लाजपत राय आदि भी इस सत्याग्रह में सहायता दी थी। उस आन्दोलन के कुछ प्रमुख आदर्श थे। स्वदेशी का प्रचार, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, सरकारी शिक्षण संस्थाओं, नौकरियाँ, अदालत तथा कौंसिलों का त्याग, राष्ट्रीय स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना, अस्पृश्यता निवारण, साम्प्रदायिक एकता, चरखे का प्रचार आदि थे। गाँधी जी के उस असहयोग आन्दोलन की सफलता के कारण ही हिन्दू और मुसलामानों की एकता जागने लगी थी। गांधी जी का विचार लोगों के कण–कण में बस गया था। उस समय देश की सरकार अंग्रेज़ों के हाथों में थी, इसलिए साधारण जनता सरकारी नौकरियों से त्यागपत्र देने लगी थी। देश में जो भी वस्तुएँ उपलब्ध थी, उन्हीं वस्तुओं का ही उपयोग किया गया और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया था। छुआछूत, जातिवाद कम होने लगा था। देश के अन्दर आम जनता की यह एकता अंग्रेज़ों से देखा नहीं जाता था। वे, लोगों में भिन्नता पैदा करने का उपाय ढूंढ रहे थे। उन्होंने नृशंस दमन–चक्र का सहारा ले कर देशी लोगों की इस एकता के आन्दोलन को कुचालने के लिए प्रयास किया था। अंग्रेज़ साम्राज्य ने साधारण जनता के प्रति उनकी शोषण पद्धतियों को और भी कठोर कर दिया था। सत्याग्रह आन्दोलन की इस नीति से गुस्सा हो कर अंग्रेज़ों ने गाँधी के साथ कुछ बुद्धिजीवियों को भी गिरफ़्तार किया था। गाँधी जी छरू वर्ष के लिए अंग्रेज़ों के कैद में रहे थे। उसी आन्दोलन से प्रभावित हो कर प्रेमचंद ने सन् 1921 ई वीं में अपने बीस वर्ष की नौकरी का इस्तीफ़ा दे दिया। वे स्वतंत्रता आन्दोलन में गहरे और ईमानदारी से जुड़े थे। प्रेमचंद ने तत्कालीन शासन को पत्र लिखते हुए बताते है;– 'मेरे विचार में वर्तमान शासन सत्पथ से पूर्णतरू विचलित हो गया है। इस आज्ञा द्वारा प्रजा के जन्मसिद्ध स्वत्वों को छीनना और राष्ट्रीय

भावों का वध, जातीयता का खून करना है। अतएव अब मुझे इस राज्य संस्था से असहयोग करने के सिवा और कोई उपाय नहीं है।'[10] प्रेमचंद ने रंगभूमि द्वारा गांधीवादी आदर्शों की स्थापना की रचनात्मक पहल की। रंगभूमि उपन्यास तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों का दस्तावेज़ माना जाता था। उपन्यास में प्रेमचंद ने अंग्रेज़ी हुकूमत के दलालों के असली रूप को बेनकाब करके सामने लाया था। इस उपन्यास का मुख्य पात्र सूरदास, न तो गांधीवाद का झुनझुना है और नहीं मार्क्स वाद का खिलौना। वह सिर्फ़ सत्य, उदारता, न्याय, परोपकार, दीन, ईमान जैसे मानवीय गुणों का पुंज था। पांडेपुर गाँव में उसका दस बीघा ज़मीन था। जॉनसेवक जो उस गाँव में अंगेज़ी पूँजी पतियों का गुलाम था, उस दस बीघे ज़मीन में सिगेरट का कारखाना खोलने जा रहा था, लेकिन उसके सारे प्रलोभन असफल हो गये, क्योंकि सूरदास उस ज़मीन को बेचना ही नहीं चाहता था। गाँव के सारे पशु उसी ज़मीन पर चरने की वजह से सूरदास ने उस ज़मीन को बेचने से इंकार किया था। वह अन्याय नहीं चाहता था, पर उस इलाके के राजा महेंद्र सिंह ज़बरदस्ती उस गरीब अंधे से ज़मीन छीन कर उस अंग्रेज़ी पूँजी पति को देना चाहते थे। महेंद्र सिंह जैसे प्रतिष्ठित लोग, अपने मान–मर्यादा और पद को कायम रखने के लिए अंग्रेज़ों के हाथ की कठपुतली बन के रह रहे थे। अंग्रेज़ों के हर इशारे पर नाचने को तैयार थे। उसके असली चेहरे जब उसकी पत्नी के सामने आता तो वह इंसानियत का सन्देश देते हुए कहती है– "उपहास इतना निंद्य नहीं है, जितना अन्याय। मेरी समझ में नहीं आता कि आपने इस पद की कठिनाइयों को जानते हुए भी इसे क्यों स्वीकार किया..आपको नगरवासियों और विशेषतः अपने स्तत्व की रक्षा करनी चाहिए। अगर हुक्काम किसी पर अत्याचार करे, तो आपको उचित है कि दुखियों की हिमायत करें निजी हानि–लाभ की चिंता न करके हुक्काम का विरोध करें, सारे नगर में, सारे देश में तहलका मचा दें, चाहे इसके लिए पद–त्याग ही नहीं, किसी बड़े–से–बड़े विपत्ति का सामना करना पड़े। मैं राजनीति के सिद्धांतों से परिचित नहीं हूँ। पर आपका जो मानवीय धर्म है, वह आप से कह रही हूँ।"[11] इससे यह स्पष्ट होता है कि उस ज़माने के राजाओ, नवाबों, ज़मीनदारों थोडे ही सुविधा के लिए मनुष्यता को भी बेच रखा था। उपन्यास के एक पहलु में प्रेमचंद दिखा रहे थे कि देश के कुछ भारतीय सामंत देश की चिंता कर रहे थे, लेकिन उन पर भी ब्रिटिश उपनिवेशवाद की आर्थिक और प्रशासनिक नीतियों का प्रभाव पड़ा हुआ था। इसी वजह से उनको जनता के दुःख–दर्द का कोई एहसास नहीं होता था। उपन्यास में रानी जाह्नवी और कुवर भारत सिंह उस भारतीय सामंतों का प्रतिक थे, उनका बेटा विनय सिंह, जनता को केवल राहत नहीं दे रहा था, उनको समाजवादी राह दिखा रहा था। जनता के लिए अधिकारियों से भी लड़ता था। उस समय आम जनता का स्थिति उसका दोस्त वीरपाल, विनय को बताते थे। वह कहते थे कि अधिकारियों ने आम जनता का खून चूस रहे हैं। दिन–दहाड़े किसी का भी क़त्ल करके पुलिस को घूस देंगे तो किसी भी सज़ा से बच आओगे और इसके बदले किसी बेक़सूर को फाँसी पर चढ़ा दिया जाएगा। उपन्यास में प्रेमचंद अनेक पहलुओं द्वारा आम जनता का ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह का चित्रण किया है। जब विनय जेल में होता था तो सोफ़िया अंग्रेज़ी अधिकारी विलियम क्लार्क से हम दर्दी व्यक्त करने की सिफारिश करती है, वह बोलता है; "जो सहानुभूति साम्राज्य की जड़ खोखली कर दे, विद्रोहियों को सर उठाने का अवसर दे, प्रजा में अराजकता का प्रचार करे, उसे मैं अदूरदर्शिता नहीं पागलपन समझता हूँ।"[12] जब क्लार्क की गाड़ी भीड़ के बीच से आती है तब उसी गाड़ी के नीचे आके एक लोग की मृत्यु हो जाती है, इसलिए लोग क्लार्क का बंगला घेर लेते हैं और विद्रोह करना शुरू करते हैं। उपन्यास के अंत में जॉनसेवक जो अंग्रेज़ी साम्राज्य का पूँजीपति सामंती है, उसके सामने सूरदास अंतिम तक लड़ता रहा और अपनी जान भी दे दिया पर हार नहीं माना। सूरदास के माध्यम से प्रेमचंद ने अंग्रेज़ी सामंत के विरुद्ध अप्रसन्नता प्रकट किया। देश के बड़े–बड़े न्यायलय, अदालत, गरीब किसान का न्याय नहीं देखता, बल्कि अंग्रेज़ हुकूमत के दबाव में आके सरकारी पिट्ठुओं का ही तरफ़दारी करता था। उपन्यास में प्रेमचंद कहते हैं; "अदालत के बहार अदालत की मर्यादा भंग होने का डर था। कई हज़ार कंठों से ध्वनि उठी– तुम बेक़सूर हो हम तुम्हें बेक़सूर समझते हैं। अदालत बेईमान है। अदालत नहीं, दीनों की बलिवेदी है। कई हज़ार कंठों से प्रतिध्वनि निकली अमीरों के हाथ में अत्याचार का यन्त्र है।"[13] उन कई आवाज़ों में प्रेमचंद की आवाज़ है जो दीन दलितों का अन्याय देख नहीं पाता। वास्तव में रंगभूमि औद्योगिकीकरण के दुष्परिणामों को रेखांकित करने वाला संघर्ष प्रधान उपन्यास है। औद्योगिकरण से किसी सामंत या किसी व्यापारी का नुकसान नहीं हुआ था, जबकि उसका सारा दुष्परिणाम गाँव के किसानों पर था। उनके ज़मीन, उनके बहन–बेटियों पर पाश्चात्यकरण की वही दुष्परिणाम का प्रभाव पड़ गया था। इसी बात को रंगभूमि उपन्यास में दर्शाया गया था। प्रेमचंद के उपन्यास 'गबन' में भी उस समय की पुलिस का अत्याचार दिखाया गया था। झूठी गवाहों को जुटा कर किस तरह पुलिस बेकसूरों को फाँसी पर लटकाती हैं, गबन में भी चित्रित किया गया था। यही ब्रिटिश शासन के समय भारत की स्थिति थी। अक्सर ब्रिटिश सरकार आतंकवादियों और अन्य स्वतंत्रता सेनानियों को झूठे मुकद्दमों में फसाकर कठोर दंड दिया करते थे। प्रेमचंद ने इसी यथार्थ को अपने उपन्यासों द्वारा जीवंत कर दिया था। जब प्रेमचंद वरदान उपन्यास लिख रहे थे तब विश्व की राजनीतिक स्थिति संकटपूर्ण थी। जापान ने रूस को परास्त कर दिया था। छोटे साम्राज्यवादी शक्तियों के शोषण और अत्याचार से छोटे देश जैसे इंडिया, श्रीलंका पीड़ित थे। भारत में लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में राजनीतिक चेतना का जागरण हो रहा था। इसी समय में युगप्रवर्तक प्रेमचंद ने राष्ट्रीयता, देशभक्ति जन–जन में जगाने की आवश्यकता समझा था और उन्होंने अपनी लेखनी को औसार की तरह इस्तेमाल किया था। वरदान का मुख्य विषय देशभक्ति है। कथा के आरम्भ में सुषमा, देवी माँ से एक ऐसे पुत्र का वरदान मांगती है जो अपना जीवन देश–सेवा में समर्पित कर सकें। उस उपन्यास में तात्कालिक समाज का दृश्य भी दिखाया गया है। गाँव की दशा का चित्रण करते हुए विरजन लिखती है– 'मनुष्य को देखो, तो उनकी दशा शोचनीय है। हड्डियाँ निकली हुई हैं। वे विपत्ति की मूर्तियाँ और दरिद्र के जीवित चित्र हैं। किसी के शरीर पर एक बेफ़टा वस्त्र नहीं है और कैसे भाग्यहीन हैं, कि रात–दिन पसीना बहाने पर भी कभी भरपेट रोटियाँ नहीं मिलतीं..।'[14] इस प्रकार 'विरजन' नामक पात्र से गाँव के लोगों पर किये गए अत्याचार, ज़मीनदार और साहूकारों की ज़्यादतियों के चित्र प्रकाश में आते हैं। देश में उपनिवेश होते ही गाँव के ज़मींदारों का बोल–बाला चलना शुरू हो गया था। ज़मींदारी प्रथा भी ब्रिटिश शासन का ही निर्माण था। गाँव का मूल ढाँचा ब्रिटिश सामंती के अधीन था। उनके शोषण का शिकार गाँव के गरीब किसान थे। प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में इन्हीं किसानों की अत्यंत दयनीय दशा दिखाया गया है। उसमें महाजनों का शोषण पर ज़िक्र भी किया गया है। ज़मींदार 'ज्ञानशंकर' अपने स्वार्थ–पूर्ति के लिए लगान की वसूली में कड़ाई करने का आदेश, कारिन्दा 'गैस खां' को

दे दिया था। गैस खां बड़ी चालाकी और नाइंसाफ़ी के साथ किसानों का शोषण करता था। वर्षान्त होने पर सब को पता था कि फ़सल की कोई आमदनी नहीं मिलती। उसी अवसर पर उन्होंने बड़ी निर्दयता से किसानों से लगान वसूल किया था। जहाँ तक कि एक कौड़ी भी बाकी न छोड़ी। जो कोई रुपये न दे सके, तो उस पर नालिश की, कुर्की करायी थी और एक का डेढ़ गुना वसूल किया था। साथ–साथ असामियों की भूमि पर लगान बढ़ाकर दुसरे आसामियों को सौंप भी दिया था। इस अन्याय से पूरा गाँव, हाहाकार से गूंज उठा। महाजनी प्रथा के उस कटु सत्य को दर्शाते हुए 'वागन नैश' ने सन् 1900 ई० में प्रकाशित 'द ग्रेट फ़ेमिन' में लिखा था कि "अधिकारी महाजनों को लगान वसूली के लिए अपना प्रमुख सहायक मानते हैं।"[15] ज़मींदार वर्ग अंग्रेजों के पिट्ठू बनकर शोषण के हथियार के रूप में किसानों के सामने पेश आ रहे थे। प्रेमाश्रम किसानों की दीन–हीन दशा के साथ ही देश की बिगड़ी हुई राजनीतिक हालत भी प्रस्तुत करता है। उपन्यास में 'ज्ञानशंकर' पूंजीवादी सामंती का प्रतीक था और असमियों का शोषण करता था। उनके व्यवस्था के विरुद्ध किसान संघर्ष जारी रखे। उनका भाई 'प्रेमशंकर' विदेश से पढ़ कर आता और उपन्यास के तीसरी पीढ़ी मयाशंकर, प्रेमशंकर की समाजवादी विचारों से प्रभावित होता। अंत में किसानों को उनका हक़ दिलवाने में समर्थ होता था। यह प्रेमचंद के समय के समाज में भी दिखने को मिलता था। कई नौ जवान विदेश से पढ़ कर आया करते थे और देश के सुधार हेतु अंग्रेजों के विरुद्ध काम करते थे। उपनिवेश समय में समाज के रक्षा करने वाले पुलिस भी अंग्रेज़ सामंत के दबाव में आकर भ्रष्टाचार कर रहे थे। प्रेमचंद का 'गबन' उपन्यास में इसके बारे खुलासा किया गया है। भले ही रामनाथ को अपनी राष्ट्रविरोधी भूमिका का ज्ञान था, फ़िर भी पुलिस विभाग के प्रलोभन में फँसकर विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा था। अपनी झूठी गवाह से कई बेगुनाहों को भारी सज़ा मिलेगी, इस मानसिक अंतर्द्वन्द्व से तो वह पीछे नहीं हट सकता था। जहाँ तक कि जाल्पा के रोकने पर भी वह उस कार्य से विमुख नहीं हो पाया। प्रेमचंद उसपर जालपा के माध्यम से प्रहार करते हैं। जालपा कहती है; "जाओ शौक से ज़िन्दगी के सुख लूटो। मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था और आज भी फ़िर कहती हूँ, कि मेरा तुमसे कोई नाता नहीं है। मैंने समझ लिया कि तुम मर गये। तुम समझ लो, मैं मर गयी। बस जाओ। मैं औरत हूँ। अगर कोई धमकाकर मुझसे पाप कराना चाहे तो मैं उसे न मार सकूँ, अपनी गर्दन पर छुरी चला दूँगी।"[16] प्रेमचंद के कर्मभूमि उपन्यास ब्रिटिश सरकार के प्रति जनता का असंतोष और स्वाधीनता आन्दोलन पर लिखे गए एक दास्ताँ है। उपन्यास में मुन्नी अपने बलात्कार के बाद दो गोरों का क़त्ल करके जेल जाती है। उस ब्रिटिश शासन के समय भारत में गोरे फ़ौज थे और वे भारत को अपना उपनिवेश समझते थे। अवसर मिलने पर वह फ़ौजी लोग, गरीब स्त्रियों के साथ बलात्कार करने में भी पीछे नहीं हठते थे। जब डॉ० शान्तिकुमार कही जा रहे थे, तब उन्होंने अंग्रेज़ सैनिकों को किसी स्त्री के साथ बलात्कार करते हुए देखा था। वे उनलोगों की अवहेलना करते हैं कि वे अंग्रेज़ इंग्लैण्ड के निम्न श्रेणी के मनुष्य हैं और उनका इतना हिम्मत कि भारतीय महिलाओं का बलात्कार करें। इसलिए भारत अभी तक पराधीन है। वे इस बात पर दुखी हो जाते हैं कि भारत पर आतंक छाया हुआ है, इसलिए यह दो टके के मनुष्य देश की मासूमों के साथ खेलते है जबकि कोई आवाज़ ही नहीं उठाता। कर्मभूमि का यह प्रसंग भी उसी समग्र यथार्थ को दर्शाता है जो उस समय भारतीय पराधीनता पर समाज में देखने को मिलता था। विभिन्न उपनिवेशवादी नीतियाँ बना कर ब्रिटिश सरकार ने आम जनता का कई प्रकार से शोषण कर रहे थे। इसके फलस्वरूप भारत के किसान, भूमिहीन मज़दूर, मिल मज़दूर, छोटे–मोटे कारिगर, नाई, धोबी, दर्ज़ी, मेहतर, चमार, जैसे निम्नवर्ग के घरेलू नौकरी करनेवाले लोगों की स्थिति, पशुओं से भी गयी गुज़री दिखाई देने लगी थी। प्रेमचंद ने अपनी लेखनी द्वारा इन दुखियों की स्थिति का मर्म स्पर्श चित्रण किया था। इस कहानी के साथ उपन्यास में दलित किसानों की दयनीय दशा को भी सूत्रपात किया गया है। अंग्रेज़ों के दमनकारी शोषण के सामने गाँव में किसानों का संघर्ष, अंग्रेज़ों को झुकने के लिए बाध्य करता है। यही दशा कर्मभूमि में भी देखी जा सकती है। अंग्रेज़ों से मुक्ति पाने के लिए प्रेमचंद के समय में लोग कई तरीके अपनाने लगे, जैसे आतंकवादियों ने हिंसात्मक तरीके से देश को आज़ाद करना चाहा, नर्म–दल वाले अनुनय–विनय का तरीका अपनाया, और गांधी जी ने अहिंसा और सत्याग्रह के मार्ग को अपना कर देश को आज़द कराना चाहते थे। साथ–साथ इन सब के बीच में देश को आज़ाद कराने के लिए प्रेमचंद ने अपनी लेखनी के माध्यम से लोगों को जगाने का प्रयास किया। ब्रिटिश सरकार ने अपना शासन कायम रखने के लिए गाँव के लोगों में भेद–भाव फैला दिया था। हरिजन आन्दोलन भी इसका फल स्वरुप था। कर्मभूमि उपन्यास में इसके बारे में खुलासा किया गया है। गाँधी जी ने अस्पृश्यता–निवारण का आन्दोलन चला कर उसका विरोध किया था। उच्चवर्ग के लोगों ने भले ही उसका विरोध किया था, फिर भी देश के हर हिस्से में हरिजनों के मंदिर प्रवेश का आन्दोलन कोंग्रेज़ द्वारा चलाया जा रहा था और वे सफल भी हो गए थे। उपन्यास में सरकारी दमन इस तरह चित्रित किया गया है; 'पुलिस ने उस पहाड़ी इलाके का घेरा डाल रखा था। सिपाही और सवार चौबीस घंटे घुमते रहते थे। पाँच आदमियों से ज्यादा एक जगह जमा न हो सकते थे। शाम के आठ बजे के बाद कोई घर से न निकल सकता था।...पाठशाला में आग लगा दी गयी थी।...'[16] इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि प्रेमचंद के उपन्यासों में उपनिवेशवाद का जो प्रतिरोध दिखाई देता है, वह उनके व्यवहरों, विचारों में ही नहीं बल्कि उनकी लेखनी में भी झलकता है। प्रेमचंद किसानों के जीवन के अलग–अलग पहलुओं पर उपन्यास लिख चुके थे, जैसे प्रेमाश्रय में बेदखली और इजाफ़ा लगान पर, कर्मभूमि में बढ़ती हुई आर्थिक संकट और गोदान में किसानों की दयनीय सिथिति का चित्रण किया है ये सभी उपयुक्त उपन्यास में जो स्थिति दिखाया गया है इसका मूल कारण उपनिवेशवाद ही है।

संदर्भ

1. सम्पादक अमृतराय, 'विविध प्रसंग' खंड 1, पृष्ठ 268, हंस प्रकाशन, इलाहबाद, प्रथम संस्करण, 1967
2. डॉ० सरिता राय, उपन्यासकार प्रेमचंद की सामाजिक चिंता, पृष्ठ 16, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996
3. विविध प्रसंग, खण्ड दो, पृष्ठ 270–277, हंस प्रकाशन, इलाहबाद, प्रथम संस्करण, 1967
4. मुंशी प्रमचंद, गोदान, पृष्ठ 355, सरस्वती प्रेस, वाराणसी, संस्करण, 1936
5. डॉ० सरिता राय, उपन्यासकार प्रेमचंद की सामाजिक चिंता, पृष्ठ 17, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996

6. मुंशी प्रेमचंद, कायाकल्प, पृष्ठ 108, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 1926
7. मुंशी प्रमचंद, गोदान, पृष्ठ 110, सरस्वती प्रेस, वाराणसी, संस्करण, 1936
8. सत्यकाम, 'आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद', पृष्ठ 64, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994
9. अमृत राय, 'प्रेमचंदरू कलम का सिपाही', पृष्ठ 95, हंस प्रकाशन, इलाहबाद, संस्करण, 1976
10. अमृत राय, 'प्रेमचंदरू कलम का सिपाही', पृष्ठ 225, हंस प्रकाशन, इलाहबाद, संस्करण 1976
11. मुंशी प्रेमचंद , रंगभूमि, पृष्ठ 193, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2013
12. वही, पृष्ठ 209
13. वही, पृष्ठ 90
14. मुंशी प्रेमचंद, वरदान, पृष्ठ 83, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, संस्करण 2013
15. सत्यकाम, 'आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद', पृष्ठ 65, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1994
16. प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृष्ठ 335, हंस प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008